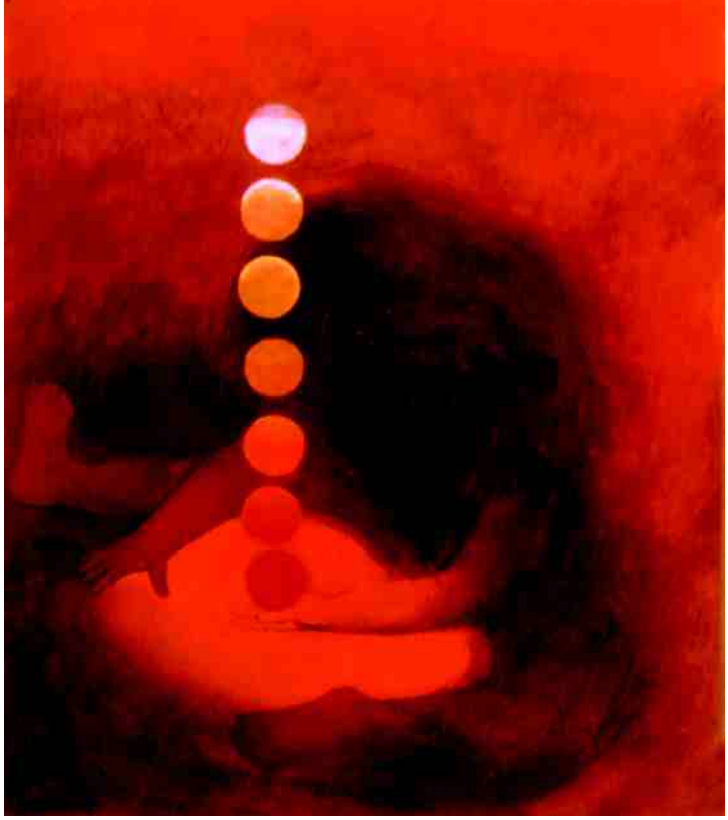

एक थाल चाँद भरा...

वो ठण्ड का एक दिन था। मैं खेत सिंह के आँगन में बैठा अलाव ताप रहा था। उसके तीनों बच्चे वहीं पास में खेल रहे थे। उन्हें भूख लग रही थी सो बीच-बीच में गाते जाते थे, "माँ खाना दे, माँ खाना दे।" माँ खेत सिंह के आने की बाट जोह रही थी। वो बोली, "रुक जाओ। तुम्हारे बाबा गट्ठा बेचने शहर गए हैं। वो कुछ लाएँगे उसी से खाना बनेगा। घर में कुछ नहीं है।" बच्चे फिर खेल में लग गए। भूख तेज़ लगी तो "माँ खाना दे, माँ खाना दे।" तेज़-तेज़ और जल्दी-जल्दी गाने लगे। माँ बड़े पसोपेश में थी कि करे तो क्या करे।

बच्चों का ध्यान बँटे यह सोचकर माँ ने कहा, "आँगन में पट्टी बिछाओ और थाली लेकर बैठ जाओ।" माँ की यह तरकीब भी बहुत देर तक काम न आई। अब तक बच्चे अधीर होकर थाली बजाते हुए गाने लगे थे, "माँ खाना दे... माँ खाना दे।" माँ अन्दर गई। और सुबह के खाने की हाँडी खुरचने लगी। फिर बाहर आकर बारी-बारी से तीनों थालियों में थोड़ी-थोड़ी खुरचन परोस दी।

तीसरी थाली में लगभग कुछ न था। बच्चा बोला, "माँ दे ना।" माँ बोली, "दिया तो। खा ना।" बच्चा बोला, "क्या खाऊँ? पूरी थाली में तो चन्दा चमक रहा है।" माँ रुआँसी हो बोली, "क्या दूँ। तू तो चन्दा को ही खा ले।"

माँ झोपड़ी के पीछे जा रोने लगी। और आसमान में चन्दा यह सब देखता रहा। चकमक

(यह म. प्र. के एक आदिवासी गाँव नीलगढ़ की सच्ची कहानी है। कुछ साल पहले हमारे मित्र अनन्त गंगोला ने यह अनुभव हमसे साझा किया था।)

दोनों पेंटिंग - सिद्धार्थ

मोड़ा-मोड़ियो

आओ रे मोड़ा-मोड़ियो
ढकोला म खेलैंगा
ढकोला म आग लग गी
मामान कै चालैंगा
मामो लायो खांड खोपरा
मामी ल्यायी मेथी
मेथी में तो घाटो पड़गो
खाओ गेहूँ की रोटी
चाल चलौ जी चाल चलौ
सौ-सौ घोड़ा ले चलो
एक घोड़ो आरमपार
बामैं बैठयौ साहूकार
साहूकार की लम्बी टोपी
आयी पूरे नौ सै दो की
भारी महँगी आयी जी
साहूकारणी ल्यायी जी
दुनिया म तंगाई जी
साहूकार कै कांई जी

यह लोकगीत सुनीता एवं प्रभात ने राजस्थान के एक गाँव रायसना से सहेजा है।